विश्व-बंधुत्व की भावना को साकार करता है दीनदयाल जी का एकात्म मानवदर्शन

सरलता और सादगी की प्रतिमूर्त्ति पंडित दीनदयाल उपाध्याय बहुमुखी एवं विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। उनका जीवन परिश्रम और पुरुषार्थ का पर्याय था। वे कुशल संगठक एवं मौलिक चिंतक थे। सामाजिक सरोकार एवं संवेदना उनके संस्कारों में रची-बसी थी। उनकी वृत्ति एवं प्रेरणा सत्ताभिमुखी नहीं, समाजोन्मुखी थी। एक राजनेता होते हुए भी उन्होंने जीवन और जगत के सभी पक्षों एवं प्रश्नों पर गहन चिंतन किया और उसका युगानुकूल चित्र खींचने और उत्तर देने का सार्थक प्रयास भी। और इस नाते वे एक राजनेता से अधिक राष्ट्र-ऋषि थे।

आज भारतीय जनता पार्टी जिस भिन्न एवं विशिष्ट वैचारिक अधिष्ठान और मज़बूत सांगठनिक आधार पर खड़े और टिके रहने का दावा करती है, उसके वास्तविक शिल्पी और प्रणेता पंडित दीनदयाल उपाध्याय ही थे। बल्कि यह कहना चाहिए कि उन जैसे ध्येयनिष्ठ साधकों की अहर्निश साधना एवं समर्पण के बल पर ही भाजपा को सत्ता की सिद्धि प्राप्त हो सकी है। वे एक ऐसे राजनेता के रूप में हमारे समक्ष आते हैं, जिन्होंने न केवल स्वयं भारत को भारत के दृष्टिकोण से जानने-समझने-देखने की दृष्टि विकसित की, अपितु बहुतेरों को भी वैसी ही दृष्टि प्रदान की। भारत की चिति एवं प्रकृति के मौलिक एवं सूक्ष्म द्रष्टा थे- दीनदयाल उपाध्याय। वे सही अर्थों में व्यष्टि एवं समष्टि के चिरंतन सत्य एवं सदियों के अनुभव का साक्षात्कार कर पाए थे।

विदेशी सत्ताएँ तो परकीय दृष्टिकोण से संचालित थीं ही, स्वतंत्र भारत में भी ऐसे राजनीतिक नेतृत्व एवं दलों की कमी नहीं रही, जिनका दर्शन पश्चिम-प्रेरित रहा या जो भारत और इंडिया का फ़र्क नहीं जानते रहे और यदि जानते भी रहे तो उनका हित दोनों के अंतर को बनाए रखने में ही सधता रहा। वे भारत की समस्याओं का अध्ययन-अवलोकन पश्चिम के दृष्टिकोण से ही करते रहे। उन्होंने भारत और उसकी समस्याओं को खंड-खंड करके देखा, इस विखंडनवादी दृष्टिकोण के कारण ही वे भारत का समग्र चित्र प्रस्तुत करने में विफल रहे। और कदाचित इसी कारण वे यहाँ की समस्याओं को गहराई से समझने एवं उसका समाधान दे पाने में भी सफल नहीं हो पाए। दीनदयाल जी का मानना था कि चाहे वह पूँजीवाद हो या साम्यवाद, समाजवाद हो या व्यक्तिवाद, इन सभी दर्शनों की अपनी-अपनी कुछ सीमाएँ-लघुताएँ हैं। क्योंकि ये वाद के संकीर्ण-संकुचित दायरे में आबद्ध रही हैं, इनकी जड़ें विदेशी हैं और इन सबने मनुष्य का चिंतन-विश्लेषण टुकड़ों में किया है। और जब तक मनुष्य का समग्रता एवं संपूर्णता से चिंतन नहीं किया जाएगा, तब तक उसकी समस्याओं का भी संपूर्ण-समग्र समाधान प्रस्तुत

नहीं किया जा सकेगा।

इसलिए उन्होंने मनुष्य का समग्र चिंतन करते हुए जिस दर्शन का प्रवर्त्तन किया, उसे पहले 'समन्वयकारी मानववाद' और बाद में 'एकात्म मानववाद' नाम दिया। चूँकि वाद की अवधारणा भारतीय मन एवं सनातन संस्कृति के अनुकूल नहीं, इसलिए आगे चलकर इसे 'एकात्म मानव दर्शन' कहा गया। उनका कहना था कि पश्चिमी जगत व दर्शन जीवन के सभी क्रियाकलापों के केंद्र में 'अस्तित्व के लिए संघर्ष', 'शक्तिशाली का ही अस्तित्व', 'प्रकृति का शोषण' और 'वैयक्तिक अधिकार-भाव' को सर्वोपरि मानता आया है। जबकि दीनदयाल जी के मतानुसार अस्तित्व के लिए संघर्ष से अधिक सहयोग और समन्वय की आवश्यकता है। भारत की सनातन संस्कृति सर्वत्र सहयोग एवं सामंजस्य देखती आई है। सृष्टि के अणु-रेणु में एक ही परम ब्रह्म परमात्मा या चेतना के दर्शन करती आई है। उनका मानना है कि संपूर्ण जगत में जो संघर्ष एवं कोलाहल दिखाई देता है, वह मनुष्य की भेद-बुद्धि का परिणाम है।

उनके अनुसार भारतीय जीवन-दृष्टि केवल शक्तिशाली के अस्तित्व-रक्षा में नहीं, अपितु सबके अस्तित्व की रक्षा में जीवन और जगत का कल्याण देखती है। इसीलिए यहाँ के चिंतन में सबसे पूर्व बाल-वृद्ध, अशक्त एवं दुर्बल की चिंता की गई है, न कि शक्तिशाली की। यहाँ प्रकृति को दासी या भोग्या नहीं, अपितु जीवन प्रदायिनी शक्ति या पालन-पोषण करने वाली जननी माना गया है। प्रकृति को भोग्या या दासी मानने के दुष्परिणाम आज हमारे सम्मुख हैं। तरह-तरह की संक्रामक महामारी एवं विध्वंसक प्रदूषण आज संपूर्ण विश्व को निगलने को तैयार हैं। और वैयक्तिक अधिकार से पूर्व भारत वर्ष में कर्त्तव्यों के पालन की परंपरा रही है। व्यक्ति परिवार के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करता है, बदले में परिवार उसके अधिकारों की रक्षा करता है।

परिवार समाज के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करता है, बदले में समाज उसके अधिकारों की रक्षा करता है। समाज राष्ट्र के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन करता है, बदले में राष्ट्र उसके अधिकारों की रक्षा करता है और राष्ट्र विश्व के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन करता है, बदले में विश्व उसके अधिकारों की रक्षा करता है। इस प्रकार व्यष्टि से समष्टि और समष्टि से परमेष्टि तक संपूर्ण मानव-जाति अन्योन्याश्रित भाव से एक-दूसरे से जुड़े हैं। कोई किसी से विलग नहीं, कोई किसी से निरपेक्ष, स्वयंभू या पृथक नहीं। संपूर्ण चराचर में व्याप्त उस एक ही सत्य या परम तत्व को पाने और देखने का दूसरा नाम ही एकात्म मानव दर्शन है। दरअसल एकात्म मानव दर्शन भारत की सनातन संस्कृति एवं चिरंतन जीवन-पद्धत्ति की युगीन व्याख्या है। परस्पर सहयोग एवं आंतरिक-तात्विक जुड़ाव पर अवलंबित रहने के कारण यह विस्तारवादी-साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों एवं महत्ववाकांक्षाओं पर विराम लगा विश्व-बंधुत्व की भावना को सच्चे एवं वास्तविक अर्थों में साकार करता है।

पश्चिम ने मनुष्य को केवल शरीर तक सीमित करके देखा। कतिपय चिंतक मन और बुद्धि तक स्थूल रूप से पहुँचे अवश्य, पर वे आत्मा तक नहीं पहुँच सके। दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार मनुष्य केवल शरीर नहीं, अपितु शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का समुच्चय है। वह समान रूप से इन सबके सुखी होने पर ही सुख की गहरी एवं स्थाई अनुभूति कर सकता है। उसके कार्यों की प्रेरणा एवं जीवन के लक्ष्य को केवल भौतिक एवं ऐंद्रिक सुखों तक समेट देना उसकी सूक्ष्म एवं विराट चेतना को बहुत कम करके आँकना होगा।

संसार की सभी महानतम उपलब्धियों के पीछे कोई-न-कोई महान प्रेरणा या ध्येयनिष्ठा काम करती आई है। किसी एक क्षण की कौंध युगांतकारी बदलाव का कारण बनती है। चाहे वह भगत सिंह, नेताजी सुभाष चंद्र बोस, चंद्रशेखर आज़ाद का संघर्ष, बलिदान एवं उत्सर्ग हो, चाहे छत्रपति शिवाजी, महाराणा प्रताप, गुरु गोविंद सिंह जी का साहस, शौर्य एवं पराक्रम हो, चाहे महर्षि अरविंद, स्वामी विवेकानंद, भगिनी निवेदिता का सेवा, त्याग एवं वैराग्य हो- क्या इन सबके पीछे की दृष्टि एवं प्रेरणा भौतिक या स्वकेंद्रित थी ?

मार्क्स की परिभाषा के अनुसार उन्हें रोटी-कपड़ा-मकान तीनों उपलब्ध थे ? फिर क्यों उन्होंने ऐसा काँटों भरा संघर्षपूर्ण पथ चुना ? महानतम प्रेरणा, सौगंधपूर्ण संकल्प या देवदुर्लभ ध्येयनिष्ठा को सीमित संदर्भों में देखना-समझना सरासर अन्याय है। बल्कि आम आदमी के अनथक परिश्रम-पुरुषार्थ, भाग-दौड़, चाक-चिक्य के पीछे भी परिवार के सुख का प्रयोजन पहले आता है और अपने सुख का बाद में। बहेलिए के बाणों से बिद्ध क्रौंच पक्षी के करुण क्रंदन से द्रवित-प्रभावित महर्षि बाल्मीकि के मुख से फूटी सहज काव्यधारा के पीछे कौन-सी प्रेरणा काम कर रही थी ? क्या उसका कोई भौतिक-लौकिक कारण ढूँढा जा सकता है ? उसे विद्वतजन जो भी नाम दें, पर वह निश्चय ही उस तल की वस्तु है, जिसे देखने-समझने के लिए गहरी अंतर्दृष्टि चाहिए। आत्मा की दृष्टि चाहिए। 'आत्मवत सर्वभूतेषु' का यह भाव ही दीनदयाल जी के एकात्म मानव दर्शन का मूल मंत्र है। संवेदना का यह सर्वव्यापी आत्मिक विस्तार ही सनातन संस्कृति का अभिप्रेत है।

यही दीनदयाल उपाध्याय के चिंतन का भी आधार था। इसीलिए वे गाँधी के 'सर्वोदय' से आगे 'अंत्योदय' की बात करते हैं। विकास की दृष्टि से हाशिए पर खड़ा अंतिम व्यक्ति उनके आर्थिक चिंतन का केंद्रबिंदु है। उसके विकास में वे समाज एवं राष्ट्र का वास्तविक विकास देखते हैं। वे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष जैसे पुरुषार्थ चतुष्टय में से किसी की उपेक्षा नहीं करते। किसी को कमतर नहीं आँकते। उनका दर्शन काल्पनिक एवं वायवीय नहीं, यथार्थपरक एवं व्यावहारिक है। हिंसा, कलह एवं आतंक से पीड़ित मानवता के लिए उनका दर्शन एक वैश्विक वरदान है, समाधनपरक उपचार है। विभिन्न राजनीतिक दलों, कार्यकर्त्ताओं, नेताओं के लिए उनका व्यक्तित्व एक ऐसा दर्पण है, जिसमें देखकर-झाँककर वे अपना-अपना आकलन कर सकते हैं। साधनों के पीछे भागते दल-राजनेता-कार्यकर्त्ता को वे सचेत एवं आगाह करते प्रतीत होते हैं कि "प्रसिद्धि एवं प्रतिष्ठा साधनों से नहीं, साधना से मिलती है।"

प्रणय कुमार
9588225950